ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-12* March-2021
Anthology : The Research

मानवाधिकारों का गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य

Gandhian Context of Human Rights

Paper Submission: 03/03/2021, Date of Acceptance: 23/03/2021, Date of Publication: 25/03/2021

मोहनलाल गोस्वामी
सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
हनुमानगढ़ राजस्थान, भारत

सारांश

महात्मा गाँधी ने ऐसी व्यवस्था की कल्पना की व उसके लिए प्रयास किया जिसमें सभी को स्वतंत्रता व समानता प्राप्त हो, तथा राज्य का स्वरूप लोककल्याणकारी हो, यह व्यवस्था सत्य व अहिंसा पर आधारित है, जिसमें सभी को मानवाधिकार प्राप्त है।

Mahatma Gandhi imagines and tries such awefarestate, where everyone gets freedom and equality. This type system must be based on truth and non -violence. In this system everyone gets their human rights also.

मुख्य शब्द : मानवाधिकार, सत्याग्रह., हृदय परिवर्तन, राज्य, अहिंसा।
Human rights, satyagrah (a form of nonviolent resistance), change of heart, State, Non-violence

प्रस्तावना

मानवाधिकार शब्द को पूर्णतः समझने से पहले हमें 'अधिकार' शब्द को समझना होगा। 'अधिकार' शब्द को परिभाषित करते हुए हैराल्ड लास्की ने कहा है – ''अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।'' अतः मानवाधिकार के बारे में यह कहना तर्कसंगत होगा कि ऐसे अधिकार जिनके बिना मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के बारे में सोच भी नहीं सकता जो कि मानव में मानव होने के फलस्वरूप अन्तर्निहित हैं। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो कि एक मानव होने के नाते निश्चित रूप से मिलने चाहिए।

'मानवाधिकार' शब्द का प्रयोग इसकी सार्वभौमिक घोषणा होने के साथ ही 1948 में किया गया जो मूलतः अठाहरवीं शताब्दी के 'मानव का अधिकार' का पुनःप्रवर्तन कर बनाया गया। इससे पूर्व परम्परागत रूप से 'मानवाधिकार' को अहस्तान्तरणीय अधिकार, अन्य को न परिवर्तित अधिकार, प्राकृतिक अधिकार या मानव के अधिकार कहा जाता था।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य महात्मा गाँधीजी के मानवाधिकारों का विस्तार से अध्ययन करना है। गाँधी जी ने मानवाधिकारों के नैतिक अवधारणा के सिद्धांत को अपनाया जिसमें हृदय परिवर्तन द्वारा बुराई को दूर करने का प्रयास किया गया, इसे सत्याग्रह का नाम दिया गया।

गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य

गाँधीजी आधुनिक युग की एक विलक्षण विभूति थे। वे राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्वोच्च नेता थे। वे एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने अपने समय के अधिकांश अनुमानों तथा विश्वासों को चुनौती दी थी। उनसे पहले राष्ट्रीय आन्दोलन समाज के कुछ वर्गों तक ही सीमित था। उन्होंने उसे जन–आन्दोलन का रूप दिया। राजनीतिक क्रिया से सम्बन्धित उनकी व्यूह रचना ने ही अंग्रेजों के विरूद्ध राष्ट्रीय विरोध के स्वरूप को निर्धारित किया था। स्वदेशी तथा बहिष्कार के विचार भारत में पहले से ही विकसित व प्रचलित थे, लेकिन गाँधीजी ने उन्हें अहिंसक सत्याग्रह के विचार से जोड़कर एक विलक्षण अर्थ प्रदान किया। उनकी राजनीतिक व्यूह रचना ने भारतीय समाज के सभी वर्गों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष से जोड़ने का प्रयास किया था। गाँधीजी ने स्वयं इस बात से इन्कार किया कि उनके विचारों आदि को 'गाँधीवाद' की संज्ञा दी जा सकती है, परन्तु यह कहना सही है कि उनमें विचारों का एक ऐसा समूह भी विद्यमान था जिसे मौलिक माना जा सकता है। ऐसे विचारों ने अन्य विचारधाराओं की भांति ही विभिन्न लोगों पर अपना अत्यधिक प्रभाव छोड़ा है। उनकी रचना 'हिन्द–स्वराज' के अतिरिक्त गाँधीजी का अधिकांश लेखन बिखरा हुआ तथा पुनरावृति मात्र है। हिन्द–स्वराज की रचना गाँधीजी ने राष्ट्रीय

आन्दोलन में आने से पूर्व की थी। इसके बावजूद, उनके लेखन में व्यक्ति एवं समाज का सुसंगत विवरण और विश्लेषण प्राप्त होता है। गाँधीजी के प्रमुख विचारों को सार–रूप में निम्नलिखित चार शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है– 1. पश्चिमी सभ्यता की समालोचना, 2. स्वतन्त्रता एवं राज्य, 3. स्वतन्त्रता एवं आर्थिक संगठन एवं 4. संघर्ष समाधान की पद्धतियां।

पश्चिमी सभ्यता की समालोचना

गाँधीजी ने विवेकानन्द तथा पुनर्जागरण के अन्य नेताओं की भांति पश्चिमी सभ्यता की आलोचना की थी। उनके अनुसार पश्चिमी सभ्यता ऐसे सुविचारित तार्किक सिद्धान्तों पर आधारित थी जो मानव सम्बन्धों को पूर्णतः अव्यवस्थित कर देती है। गाँधीजी भारतीय सभ्यता के प्रशंसक थे। उनके विचार में विश्व में व्यक्ति के स्थान से सम्बन्धित सभ्यता में भारतीय सभ्यता का दृष्टिकोण अधिक संतोषजनक था। उन्होंने आध्यात्मवाद तथा व्यक्ति की आत्म–खोज को पर्याप्त महत्व प्रदान किया। गाँधीजी की इस मत में प्रगाढ़ आस्था थी कि केवल भौतिक हितों के रूप में व्यक्ति की आत्महित की कोई भी तलाश वास्तव में सामाजिक संघर्षों को ही बढ़ायेगी। उनका सादे, नैतिक एवं पवित्र जीवन सम्बन्धी प्राचीन विचारों में प्रगाढ़ विश्वास था। इस सब का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि वे प्रत्येक भारतीय भाव या विचार के अंधे भक्त थे। उदाहरण के रूप में, उन्होंने अनुसूचित जातियों के लम्बे समय से चले आ रहे शोषण का जम कर विरोध किया था और उनकी हालत सुधारने के लिए गाँधीजी ने अन्य सभी लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक योगदान दिया।

गाँधीजी राजनीतिक लोकतंत्र के पश्चिम में प्रचलित स्वरूप को भी पसंद नहीं करते थे। उन्होंने उदारवाद को 'मछली बाजार' तथा संसद को 'एक पवित्र संस्था' कहकर उनका तिरस्कार किया था। उनका मत था कि उदारवादी लोकतंत्र में लोग केवल अपने आत्म हितों के लिए ही प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। गाँधीजी इस बात को मानते थे कि किसी भी सरकार को जन सहमति पर आधारित होना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी इच्छा थी कि राज्य निःस्वार्थ व्यक्तियों के शासन को चरितार्थ करे। उनके अनुसार ब्रिटेन में प्रचलित लोकतंत्र त्रुटिपूर्ण था, क्योंकि वह संख्यात्मक आधार पर स्थापित था। उसमें जिसे भी सर्वाधिक मत मिल जाएँ, वह शासन का अधिकारी हो जाता था। उनकी यह इच्छा थी कि किसी भी लोकतंत्र में सबसे कमजोर व्यक्ति को भी वे अवसर प्राप्त होने चाहिए, जो सबसे बलशाली व्यक्ति को उपलब्ध होते हैं। उनको उदारवादी लोकतंत्र से यह आपत्ति थी कि उसका वास्तविक प्रचलित अर्थ दलीय शासन या यथार्थ में देखा जाए जहाँ प्रधानमंत्री का शासन हो गया था। यह आवश्यक नहीं कि हर सत्ताधारी प्रधानमंत्री उद्देश्य एवं साधन की दृष्टि से सदैव सजग ही हो। गाँधीजी ने औद्योगिक सभ्यता को अनैतिक मानते हुए उसका तिरस्कार किया, जिसका कि एक व्यावहारिक कारण भी था। प्रधानतः एक ग्रामीण समाज में ज्यादातर लोग कृषि पर आधारित रहते हैं। उनका यह विचार था कि ऐसे समाज में श्रम बचत सम्बन्धी कोई भी व्यवस्था लोगों के जीवन से बहुत खिलवाड़ करती है। यद्यपि बढ़ती उम्र के साथ–साथ प्रौद्योगिकी के प्रति उनका विरोध कम होता गया था तथापि उन्होंने ऐसे किसी भी प्रौद्योगिकी को स्वागत योग्य मानना शुरू कर दिया था जो बेरोजगारी न बढ़ाए, ग्रामीण हस्त–शिल्प तथा ग्रामीण जीवन की सादगी को नष्ट न करे।

स्वतंत्रता एवं राज्य

गाँधीजी राज्य–शक्ति में अभिवृद्धि से अत्यधिक आशंकित थे। उनकी दृष्टि में ऐसी कोई भी अभिवृद्धि वैयक्तिकता के लिए अत्यन्त घातक थी। गाँधीजी के अनुसार, राज्य केन्द्रित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता था। उनका यह तर्क था कि ''व्यक्ति के पास आत्मा है, लेकिन राज्य एक आत्म–रहित यंत्र है, उसे कभी भी हिंसा से अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसका अस्तित्व ही हिंसा से निर्धारित हुआ है।'' उनका स्वराज में विश्वास था जो उनकी दृष्टि में एक ऐसी अवस्था थी, जिसमें व्यक्ति खुद अपना मालिक बन सकता था। गाँधीजी भारतीय समाज में व्याप्त आध्यात्मिक प्रभुता की पश्चिमी राजनीतिक प्रभुता से अक्सर तुलना किया करते थे। उनके विचार में पश्चिम जहाँ 'क्रूर बल' को महत्व देता था वहीं प्राचीन भारतीय समाज ऐसे राजाओं को गरिमा–मंडित करता था जिनकी तलवार की धार 'नैतिकता के अंकुश' से घट रही थी।

उन्होंने एक ऐसे अहिंसक राज्य की कल्पना की थी जो जनता की स्वैच्छिक सहमति पर आधारित था और समाज की लगभग सर्वसम्मति का प्रतिनिधित्व करता था। उनका यह दृढ़विश्वास था कि यदि भारत को अहिंसक रास्ते पर चलते हुए अपना विकास करना हो तो उसे शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना ही होगा, क्योंकि एक व्यवस्था के रूप में केन्द्रीकरण समाज की अहिंसक संरचना से असंगत है। गाँधीजी न केवल राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण के विरोधी थे, बल्कि वह आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण के भी खिलाफ थे। वह व्यापक उत्पादन तथा बाद में व्यापक नियंत्रण पर आधारित उद्योगों के भी विरूद्ध थे। उनका यह विश्वास था कि किसी केन्द्रीकृत राज्य–व्यवस्था में अमीर एवं गरीब लोगों में संघर्ष अपरिहार्य है। दूसरी ओर, विकेन्द्रीकरण लोगों को उतरदायी और अहिंसक बनाता है जिससे लोगों में परस्पर सहयोग की भावना का विकास होता है।

गाँधीजी का आदर्श राज्य पूर्णतः आत्म–नियन्त्रित था। गाँधीजी ऐसा सोचते थे कि इस राज्य में हर व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा। वह अपने को इस प्रकार शासित करेगा, ताकि वह अपने पड़ोसी के लिए कभी भी बाधा न बन सके। यही वह कारण था कि गाँधीजी राम राज्य के प्रशंसक थे, क्योंकि राम राज्य उनकी दृष्टि में आत्म सहायता, त्याग एवं अनुशासन का मूर्त रूप था। वे यह मानते थे कि ऐसा राम राज्य निकट भविष्य में निर्मित नहीं किया जा सकता, लेकिन गाँधीजी यह भी जानते थे कि ऐसा राम राज्य लाना असंभव भी नहीं है।

गाँधीजी की यह मान्यता थी कि पंचायतों के माध्यम से कार्यशील ग्राम गणमान्य लोगों को सहयोगकारी कार्य सिखाते हुए उनकी स्वाभाविक शक्तियां विकसित करने में सफल होगें। अतः उन्होंने ग्राम पंचायतों को अधिक से अधिक शक्तियां देने का आग्रह किया। इस

व्यवस्था में हर गाँव को आत्म निर्भर एवं अपने मामलों के स्वयं प्रबन्ध की क्षमता विकसित करनी थी। गाँधीजी इस व्यवस्था के इसलिए प्रशंसक थे, क्योंकि उसमें हर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से परिचित होता है। साथ ही उसे यह भी ज्ञात होता है कि ''उसे कोई भी ऐसी माँग नहीं करनी चाहिए जो दूसरा व्यक्ति उतना ही श्रम करके पाने का अधिकारी न हो।'' गाँधीजी की समाज सम्बन्धी चर्चा को गाँधीजी के इस उद्धरण के साथ समाप्त किया जा सकता है कि ''असंख्य गाँवों से निर्मित इस संरचना में ऐसे घिरे होंगे जो सतत् व्यापक होंगे, परन्तु किसी भी सत्ता का केन्द्रीकरण नहीं होगा। जीवन कोई ऐसा पिरामिड नहीं होगा, जिसका शीर्ष उसके तल पर आधारित हो, बल्कि जीवन एक ऐसा सामुदायिक केन्द्र होगा जिसका मध्य भाग व्यक्ति होगा, ऐसा व्यक्ति जो गाँवों के लिए मर मिटने को तैयार होगा और यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि अंततः सम्पूर्ण व्यक्तियों से निर्मित कोई एक समन्वित जीवन न बन जाए।'' उन्होंने इसकी आगे और व्याख्या करते हुए यह भी कहा था कि ऐसी व्यवस्था में बाह्य रूप से आंतरिक केन्द्र को कुचलने के लिए शक्ति संयोजित नहीं करेगा, बल्कि वह अंतर्निहित सभी पक्षों को शक्ति प्रदान करेगा और स्वयं उनसे क्षति एवं क्षमता अर्जित नहीं करेगा।

स्वतंत्रता एवं आर्थिक संगठन

मार्क्स की भांति गाँधीजी ने भी श्रम पर बल दिया था। उनका विश्वास था कि श्रम ही वास्तविक संपति है जो धन पैदा करती है और उसे बढ़ाती है। उनके विचार में ''सम्पति का वास्तविक स्वामी वह है जो किसी सचेत उत्पादनकारी उद्देश्य से कुछ सुनिश्चित श्रम को कार्यरूप देता है।'' उनका यह विश्वास था कि बिना कुछ श्रम के तो व्यक्ति को एक वक्त का खाना भी नहीं खाना चाहिए। श्रम सम्बन्धी ऐसा मनोभाव ही गाँधीजी की दृष्टि में, आर्थिक स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित करेगा जो बदले में हमें निर्भय बनाएगा तथा हमारे राष्ट्रीय चरित्र को और भी अधिक निखारेगा।

गाँधीजी ने सम्पति का पूरी तरह खंडन किया था। उन्होंने सदैव यह सोचा कि सम्पति ईश्वर प्राप्ति में एक कठिन बाधा है। एक बार चोरी होने के अवसर पर उन्होंने प्रेमचन्द के गंगाबिहारी के लिए दिए गए कथन का उल्लेख करते हुए यह मत दोहराया था कि, ''यह एक वरदान ही है कि मेरे सब बंधन टूट गए हैं, अब मेरे लिए श्रीगोपाल की सिद्धि आसान हो जाएगी।'' यद्यपि गाँधीजी इस बात के लिए सचेत थे कि ऐसा पक्ष लेना सामान्यतः अव्यावहारिक है। अतः उन्होंने घोषणा की कि यदि कोई सम्पति कानूनी रूप से अर्जित की जाए तो वह संरक्षण योग्य है।

इसी सन्दर्भ में गाँधीजी ने पूँजीपतियों एवं जमीदारों से न्यासी बनने का आग्रह किया था। उनका यह तर्क था कि इन लोगों को अपने किराएदारों तथा मजदूरों और काश्तकारों को सहस्वामी मानना चाहिए। जमीदारों की जमींदारी अथवा उद्यम ऐसे लोगों के पक्ष में न्यास के रूप में होनी चाहिए। गाँधीजी यह मानते थे कि पूर्ण न्यासिकता प्राप्त नहीं की जा सकती, लेकिन उनके मत में यदि उसे पाने की सच्ची कोशिश की जाए तो वह प्रयास ही इस दुनियाँ में सही अवस्था पाने की दिशा में बहुमूल्य योगदान देगा। ऐसा योगदान किसी अन्य पद्धति से नहीं प्राप्त किया जा सकता। अतएव हृदय परिवर्तन ही उनकी दृष्टि में इस समस्या का सही उत्तर था। राज्य स्वामित्व के विषय में गाँधीजी क्या सोचते थे ? क्या उनके मत में यह निजी स्वामित्व से बेहतर नहीं ? गाँधीजी ने यह माना कि वह बेहतर है, लेकिन हिंसा की वजह से उसको अस्वीकार कर दिया था। उनका यह स्पष्ट मत था कि ''यदि राज्य हिंसा द्वारा पूँजीवाद को दबाएगा तो वह स्वयं हिंसा की चपेट में आ जाएगा और किसी भी समय अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा।'' यदि जमींदार अथवा पूँजीपति न्यासी बनने से इनकार कर दें और राज्य स्वामित्व अपरिहार्य हो तो उस स्थिति में गाँधीजी न्यूनतम राज्य स्वामित्व के समर्थक थे।

संघर्ष समाधान की पद्धतियां

गाँधीजी ने घृणा के बदले प्रेम की शक्तियां विकसित करने पर बल दिया था। बहिष्कार एवं प्रतिरोध के स्थान पर उन्होंने अहिंसा तथा सत्याग्रह को अपनाने का आग्रह किया था। उन्होंने लिखा था कि साधनों को सही अर्थों में साधन होने के लिए हमेशा शुद्ध होना चाहिए। उनके लिए अहिंसा व्यक्ति का परम कर्त्तव्य था। उन्होंने कहा था कि यदि हम साधनों की पर्याप्त परवाह करें तो निश्चय ही कभी न कभी हम साध्य तक पहुँच ही जाएँगे। इस सन्दर्भ में उन्होंने अपने विचार बोरो, इमर्सन, टॉलस्टॉय तथा जैन परम्परा से प्रभावित होकर विकसित किए थे। वह 'सरमन ऑन दी माउन्ट' से प्रभावित थे। उनके अनुसार आवश्यकता इस बात की थी कि व्यक्ति को सत्य एवं अहिंसा से दीक्षित किया जाए। उनके मत में सत्य से संयोजित होकर व्यक्ति सर्वहित के लिए भौतिक स्थितियों को रूपान्तरित करेगा। गाँधीजी के अनुसार भौतिक स्थितियां तथा वैयक्तिक चरित्र वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिसमें वैयक्तिक चरित्र पहला स्थान रखता है क्योंकि केवल वही स्थाई आधार पर भौतिक स्थितियां बदल सकता है। बिना हृदय परिवर्तन के केवल भौतिक स्थितियों में ही कोई परिवर्तन वास्तव में फलदायक नहीं होगा। अतएव गाँधीजी की दृष्टि में सत्याग्रह एवं न्यास व्यवस्था दोनों ही इस प्रकार की कार्यपद्धतियां थी।

सत्याग्रह दो शब्दों पर आधारित है – 'सत्य' तथा 'आग्रह'। इसमें 'सत्य' सच्चाई का परिचायक है जबकि 'आग्रह' से 'नैतिक बल', 'प्रार्थना' तथा 'आत्मशक्ति' का बोध होता है। किसी सत्याग्रही को अहिंसा द्वारा हिंसा का विरोध करना चाहिए। इसके साथ ही, उसे नैतिक साहस एवं दृढ़ विश्वास को भी इसी उद्देश्य से नियोजित करना चाहिए। गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह अधिकारियों के प्रतिरोध का ही कोई प्रकार नहीं है बल्कि वह प्रेम और नैतिकता द्वारा समाज में प्रतिष्ठा का भी एक कारगर तरीका है। गाँधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि हिंसा दूसरों को आघात पहुँचाती है जबकि सत्याग्रह संभवतः किसी सत्याग्रही को निजी पीड़ा ही समाहित करता है। सत्याग्रही केवल जीतने की कोशिश नहीं करता, बल्कि वह सार्वजनिक कल्याण एवं सत्य की खोज करता है जिसे गाँधीजी ने ईश्वर का

प्रतीक माना था। इसके बावजूद, यदि हिंसा तथा कायरता में से किसी एक को चुनना हो तो गाँधीजी सदैव हिंसा को चुनने के पक्ष में थे।

इस प्रकार गाँधीजी ने अपने विचारों में राज्य, सम्पति तथा औद्योगीकरण पर गम्भीर वैचारिक आरोप लगाए थे। उन्होंने वैकल्पिक मूल्यों तथा संस्थाओं को भी प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार असमानताओं, बाध्यकारी राज्य तथा प्रतियोगी पूँजीवाद से युक्त कोई भी समाज वस्तुतः अनैतिक होता है। उन्होंने यह कहा था कि ''यदि सादा जीवन जीने योग्य है तो उसके लिए प्रयास करना भी प्रासंगिक है।'' उनके कई विचार अस्पष्ट रहे हैं। एक राजनीतिक व्यूह रचना के रूप में उनके चिंतन में निहित यथार्थवाद की प्रायः उनके ही विचारों में विद्यमान आदर्शवाद से तुलना की जाती है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि गाँधीजी ने लगभग उन सभी प्रश्नों को उठाया जो आधुनिक सभ्यता की दृष्टि से पूरी तरह प्रासंगिक है। इन प्रश्नों में राज्य शक्ति में अभिवृद्धि, नौकरशाही तथा प्रवर्तित उत्पीड़न, हिंसा का बढ़ता प्रयोग, बड़ी प्रौद्योगिकी के दुर्भाग्यशाली परिणाम आदि उल्लेखनीय हैं। आधुनिक सभ्यता की उनकी समालोचना अत्यधिक सारगर्भित है। इन सभी सन्दर्भों में कोई भी विचारक उतना उपयुक्त नहीं है जितना कि गाँधीजी। उनका सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान है आर्थिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पर उनका प्रबल आग्रह। स्वतंत्र भारत के संविधान में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्व इसी गाँधीवादी आग्रह का अनुसरण करने पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त आज विश्व भर के समाज वैज्ञानिक अन्तर्राष्ट्रीय विकास की विसंगतियों को दूर करने के लिए गाँधीवादी विकल्पों पर पुनर्विचार एवं पुनर्व्याख्या करने को उत्सुक हैं। ये प्रयास आज भी दुनियां में भी गाँधीजी की पर्याप्त प्रासंगिकता को सिद्ध कर रहे हैं।

स्वराज्य

महात्मा गाँधी ने हिन्द स्वराज्य में अपने 'स्वराज्य' सम्बन्धी विचारों को व्यक्त किया है। वे संसदीय व्यवस्था को स्वराज्य की धारणा के विपरीत तो नहीं मानते किन्तु वे उसमें नैतिकता भर देना चाहते थे। वे ब्रिटिश संसद की तुलना बाँझ स्त्री से करते थे, क्योंकि वे मानते थे कि संसद ने अपनी तरफ से आज तक कोई अच्छा कार्य नहीं किया। वह मंत्रियों के इशारे पर चलती है। उन्होंने प्रधानमंत्री द्वारा नेतृत्व का भी उपहास किया है। वे स्वराज्य में मशीनों के प्रचलन के भी विरूद्ध थे क्योंकि इनसे बेरोजगारी बढ़ती है। वे बहुत ही आवश्यक स्थिति में मशीनों की आवश्यकता का समर्थन करते थे।

ग्राम पंचायत

गाँधीजी अपने स्वराज्य के विचारों में ग्राम पंचायतों और कुटीर उद्योगों के अधिकतम समर्थक थे।

कर्त्तव्य और अधिकार

गाँधीजी कहते थे कि अधिकार कर्त्तव्य से ही मिलते हैं। बिना अपना कर्त्तव्य पालन किए नैतिक रूप से समाज या राज्य से हम कोई भी अधिकार नहीं माँग सकते। यदि हम सब अच्छी तरह से अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो हमें स्वतः ही हमारे अधिकार मिल जावेगें, किन्तु यदि हम कर्त्तव्यों को छोड़कर अधिकारों के पीछे दौड़ने लगेंगे तो हमारे अधिकार भी मृग मरीचिका की भांति हमसे दूर, बहुत दूर भागते चले जाएंगे। वे कहते थे कि अपने को सुधारो और अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, फिर आपके पास किसी वस्तु का अभाव नहीं रहेगा।

शक्ति

गाँधीजी शक्ति, सेना और पुलिस के विरूद्ध थे। वे खून के बदले खून लेने के सिद्धान्त के विरूद्ध थे। वे कहते थे कि खून का बदला लेने का एक मात्र उपाय यह है कि बदला लेने के कोई इच्छा न रखकर, हम खुशी से अपने आपका बलिदान कर दें। वे कहते थे कि मुझ में फौज की तरह पुलिस के बारे में यह घोषणा करने का साहस नहीं है कि हम पुलिस की ताकत के बिना काम नहीं चला सकते। अवश्य ही मैं ऐसे राज्य की कल्पना कर सकता हूँ और करता हूँ, जिसमें पुलिस की जरूरत नहीं होगी, परन्तु मेरी यह कल्पना सफल होगी या नहीं यह तो भविष्य ही बताएगा। इस प्रकार गाँधीजी कम से कम शक्ति के प्रयोग के हामी थे।

निष्कर्ष

अपनी इन समस्त वैचारिक विशिष्टताओं के बावजूद गाँधीजी ने इस वैकल्पिक संस्थात्मक व्यूह रचना को पर्याप्त रूप से विकसित नहीं किया, जिसकी सहायता से आधुनिक काल में उनके विचारों को व्यावहारिक संदर्भ प्रदान किया जा सके। उदाहरण के लिए न्यासिता सम्बन्धी अपने विचारों को प्रस्तुत करते समय उन्होंने पूँजीपतियों की भयानक खुदगर्जी पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। यह कई कारणों में से एक है, जिसकी वजह से आजादी के बाद भारतीय जनता उनके विचारों को ठोस संरचनाएं प्रदान करने में विफल रही। यद्यपि उन्होंने उनके द्वारा संचालित राजनीतिक संघर्ष के औचित्य से भारतीय जनता को अच्छी तरह अवगत करा दिया था, लेकिन वह अपने विचारों को ऐसी स्पष्टता नहीं दे सके कि भारतीय जनता को यह अनुभव हो कि नई राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था भी उनके विचारों से सम्बद्ध रही है। इसी कारण जहाँ गाँधीजी के कई अनुयायी प्रेरणा के लिए यूरोपीय समाजवाद के प्रति आकर्षित हुए, वहीं अन्य सामुदायिक जीवन के लिए सर्वोदय दर्शन की ओर उन्मुख हुए। गाँधीजी ने यह मत भी प्रतिपादित किया कि राजनीति, उद्योग तथा प्रौद्योगिकी को जीवन आदर्शों के अधीन होना चाहिए। इसी कारण से यह संभव है कि हम में से कुछ गाँधीजी के विचारों से असहमत हों, लेकिन हम उनकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते, परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं कि गाँधीजी मानवता और मानव अधिकारों के प्रबल समर्थक थे और मानवाधिकार की नैतिक अवधारणा को अपनाया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ग्राम स्वराज्य*
2. *दक्षिणी अफ्रीका में सत्याग्रह*
3. *मेरे सपनों का भारत*
4. *सत्य के साथ मेरे प्रयोग*
5. *हिन्द स्वराज्य*

Accessed online Webs URL

6. *https://en.wikipedia.org/wiki/Mahatma_Gandhi*
7. *https://www.mkgandhi.org/ebks/hind_swaraj.pdf*
8. *https://www.mkgandhi.org/ebks/An-Autobiography.pdf*
9. *https://www.mkgandhi.org/ebks/satyagraha_in_south_africa.pdf*
10. *https://www.mkgandhi.org/articles/gram-swaraj-its-relevance-in-present-context.html*